

1. अपभ्रंश काव्य में स्त्री :

कुलीनता से परतंत्रता की मुक्ति का स्वर

अपभ्रंश जैसा कि नाम से स्पष्ट है भाषा का भ्रंशित रूपअर्थात वह भाषा जिसे टूटा हुआ समझ मुख्यधारा में शामिल नहीं किया गया। मुख्यधारा में जिस भाषा का वर्चस्व था वह भाषा थी संस्कृत, पाली तथा प्राकृत और इन सबसे निचले पायदान पर जो भाषा थी वह अपभ्रंश थी। दरअसल, अपभ्रंश जनसामान्य की भाषा थी उसमें भी विशेषकर वे जन जो समाज के हाशिए पर थे जिन्होंने अपनी अलग परंपरा का निर्माण किया, अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए नई भाषा के साथ साधना की नई पद्धति भी बनाई। जिस समाज ने उसे अपनी परंपरा में शामिल नहीं किया उससे अलग उसने अपने प्रतीक गढ़े।

भारतीय आर्य भाषा की मध्य अवस्था के तृतीय प्राकृत के रूप में अपभ्रंश का जन्म होता है। स्त्री विमर्श के दायरे में भारतीय संदर्भ की जब बात होती है तो हमारा शोध मुख्य रूप से संस्कृत साहित्य या पाली-प्राकृत पर आधारित रहता है। बौद्धिक ऋषिकाओं और बौद्ध थेरियों पर हमारा विपुल शोध बताता है कि इस दिशा में हमने बहुत काम किया है लेकिन अब अपभ्रंश में लिखे साहित्य को हम आध्यात्मिकता का चोला पहना मौन हो जाते हैं क्योंकि पारंपरिक रूप से जिस अर्थ में हम ज्ञान प्राप्त कर रहे थे सिद्धों के यहां स्थिति भिन्न थी, जाति-पाति का कोई भेद नहीं होने के साथ ही स्त्री-पुरुष दोनों का तादात्म्य इस साधना के लिए आवश्यक था इसीलिए इसकी दार्शनिक व्याख्या तो कर दी जाती है लेकिन विमर्श के दायरे में यह बहुत ही कम या नगण्य रूप से चर्चा का विषय रहा है।

वैदिक ऋषिकार्यों और बौद्ध थेरियाँ दोनों ही धर्म के संरक्षण में, राज्य और राजा के संरक्षण में सुरक्षित रही हैं। लेकिन अपभ्रंश काल में पहली बार कवयित्रियाँ बिना किसी राजा तथा अन्य परिमिति के शुद्ध कविता को लेकर उपस्थित हुई हैं। इसलिए इन

कविताओं का चरित्र पूर्ववर्ती कविताओं से भिन्न है। न तो वह स्तुति गान है और न संसार-त्याग की विरक्ति वरन लोक में, राज्य में पूर्ण समानुक्ति है।

काल की दृष्टि से यह सिद्धों एवं नाथों का काल है और लगभग इसी समय विभिन्न नव्य भारतीय भाषाओं का अस्तित्व सामने आता है। ध्यान देने की बात है कि इस काल की महिलाओं ने इस धारा का स्पर्श न कर संस्कृत को अपनी अभिव्यक्ति के लिए चुना। इसलिए यह कहने के स्थान पर कि इस काल में कवियत्रियाँ नहीं मिलती, हमें यह कहना चाहिए कि वह सामाजिक अंतर्विरोध से जन्म लेती काव्य-परंपराओं के स्थान पर संस्कृतकी शास्त्रीय परंपरा को अपनाती हैं। साथ ही, वे अपने कवि कर्म के संबंध में नहीं वरन उसकी प्रतिष्ठा के संबंध में भी सचेत हैं।

चालीस कवयित्रियों के लगभग डेढ़ सौ पद बिखरे पड़े हैं जिनमें विज्जका, सुभद्रा, फल्गु हास्तनी, इंदुलेखा, मारुला, विकटनितम्बा, शीला भट्टरिका के नाम मुख्य हैं। ध्यातव्य है कि कवयित्रियों की उपस्थिति भाषा में है काल में नहीं। अपभ्रंश धार्मिक साहित्य के मध्य ऐहिक जीवन को लेकर लिखी हुई रचना है। अपभ्रंश का काल सिद्धों, नाथों और जैनों का है। सिद्धों की संख्या चौरासी मानी जाती है, मान्यता यह है कि उनमें से कुछ स्त्री भी थीं, संभवतः उनमें मणिभद्रा(65), मेखला(66), कनखला(67) एवं लक्ष्मीकरा(82) जैसी स्त्रियों का नाम लिया जा सकता है।

मेखला योगिनी, छिन्नमस्ता देवी की भाँति अपने दाहिने हाथ में तलवार एवं बायें हाथ में अपने ही मुण्डके साथ चित्रित की गयी हैं। यह वही मेखला हैं जो कृष्णपाद अर्थात् कण्हपा की शिष्या थी और उन्होंने कृष्णपाद के मत, सिद्धांत तथा साधना पर संस्कृत में टीका लिखी। जिन सिद्धों के चर्यापद मिलते हैं उनमें भी कुक्करीपा को नारी मानने की बात की जाती है। लामातारानाथ ने 'मिस्टिक टेल्ल्स' में लिखा है कि ये किसी ऐसे बज्रयोगिनी के साथ रहा करते थे जो कुक्करी जैसी जान पड़ती थी।

भवभूति के मालती-माधव नामक प्रकरण में सौदामिनी नामक बौद्ध भिक्षुणी का जिक्र आता है जो श्रीपर्वत पर कापालिक साधना सीखने गई थी। मालती-माधव का

कापालिक 'अघोरघण्ट' अपनी शिष्या 'कपाल-कुंडला' के साथ योग साधना करता है। अभिप्राय यह है कि पुरुष-योगी के साथ स्त्री-योगी भी हैं और सिद्धों की ज्ञान परंपरा में वह भी टीकाकार, व्याख्याकार के रूप में आती है। सिद्ध, स्त्री को माया नहीं मानते बल्कि परिवार एवं साधना का सशक्त आधार मानते हैं। काण्हपा अर्थात् कृष्णपाद आचार्य जब कहते हैं-

जिम लोण विलिज्जइ पाणिएहि,

तिम धरिणी लइ चित्त

समरस जाई तक्खणे,

जइ पुणुते सम गित

अर्थात् जिस प्रकार पानी में लवण विलीन हो जाता है उसी प्रकार यदि गृहिणी को लेकर चित्त को समरस (भाव) में ले जायें तो उसी क्षण से नित्य समरस में अवस्थित हो जाय। स्त्री को माया कह हमेशा दरकिनार करने की कोशिश की गयी है लेकिन काण्हपा गृह को और गृह की स्त्री को कभी नकारते नहीं। वैराग्यमूलक आस्वाभाविक जीवन को त्यागकर सिद्धों ने 'महामुद्रा' रूप में गृहिणी से परिणय कर गृहस्थ जीवन में समस्त भोगोपभोगों के बीच ही तत्त्वज्ञान का उदय सिद्ध किया। ब्रह्मज्ञान में 'डाकिनी' का अर्थ तांत्रिक साधिका से है जो सहज ज्ञान की स्वामिनी हो। 'डाक' तिब्बती शब्द है जिसका अर्थ ज्ञान होता है, डाकिनी वे स्त्रियाँ हैं जो योग-साधना में स्वयं प्रवृत्त हों या किसी साधक को प्रवृत्त कराएँ। वज्र तंत्र में एक दोहे में पाँच तत्वों की व्याख्या करते हुए डाङ्गीदेवी का संबोधन किया गया है। काण्हपाके 'चर्यापद' में जो दोहा मिलता है वह अद्भुत है। हमेशा अपने प्रिय को पाने हेतु स्त्रियों को ही अपना योगदान देना पड़ा है लेकिन यहाँ स्थिति उलट है।

काण्हपाअपने को कापालिक बताकर अपनी सह-साधिका को डोम्बी बताते हैं जिसका वास अस्पृश्य होने के कारण नगर के बाहर हैं और ब्राह्मण युवक उसकी

झोपड़ी को छू-छू कर ही चला आता है। उससे प्रेम नहीं कर सकता क्योंकि वह अस्पृश्य जाति (डोमिन) है।

नगर बाहिरे रे डोम्बी तोहोरि कुडिया।

छोड़ छोड़ जाही सो ब्राह्मण नाडिया ॥

आलो डोम्बी तोए सम करिबो मो संग ।

निधिन कान्ह कापालि जोड़ लांग ॥

एक सो पदुमा चौषठी पाखुडी।

तहिं चडिनाचअ डोम्बी बापुडी ॥

हालो डोम्बी जो पूछमि सदभावे

आइससि जासि डोम्बी कहारिनावें ।

तांति विकणअ डोम्बी अवर ना चांगेड़ा ।

तोहोर अंतरे छाड़ि नड़ पेड़ा

तुलो डोम्बी हाउ कपाली

तोहे अंतरे मोए घोणिलि हडेरि माली।

जब काणहपानायिका का चित्रण डोम्बी रूप में करते हैं तो लौकिक डोम्बी नारियों की भाँति उसका चित्रण यथार्थ से परिपूर्ण है। वह डोम्बी नारियों की तरह नगर के बाहर की कुटिया में रहती है, वह नृत्य में कुशल है। वह नौका पर चढ़कर नदी पार कर नगर के हाट में अपना सामान बेचने आती है। तंत्री, माला तथा हाथ की बुनी टोकरियाँ बेचती है। नायक उसकी तरह बनने के लिए अपनी जाति को छोड़ता है, अस्थि माला ग्रहण करता है और कापालिक का वीर वेश बनाता है। आली काली घंटा और नूपुर आदि धारण कर नायक नगर में विचरण करता है। यहां कणहपा, डोम्बी को पाने हेतु सब कुछ को त्याग कर आते हैं और डोम्बी पूरे विश्वास के साथ कहती है कि- “यदि मुझे पाना है तो मेरे जैसा होना होगा” ।

अपभ्रंश काव्य की परंपरा में सिद्ध कविता में डोम्बी का यह विश्वास वैभव तत्कालीन व्यवस्था को चुनौती देने के लिए काफी है। संस्कृति के समाजशास्त्र का मुद्दा

है परंपरा का विश्लेषण तथा परंपरा के विश्लेषण के लिए एक आवश्यक उपकरण है भाषा, इसका विश्लेषण करते हुए हम समाज की विसंगतियों का भी विश्लेषण करते हैं। कविता नैसर्गिक प्रतिभा की देन है। सौंदर्य और माधुर्य में लिपटे संत्रास की अभिव्यक्ति है कविता तभी तो हेमचंद्र के 'हेम व्याकरण' में यदि शिव का तांडव है तो दूसरी ओर उनके पार्श्व में शक्ति का लास्य भी है। हेमचंद्र के काव्य में स्त्रियां ऐसी जगह चलने को कहती हैं जहाँ प्रायः स्त्रियां सोचती भी नहीं है।

खगग विसाहिउ जहिं, लहहुँ पिय तहि देसहिं जाहुँ

रण दुम्भिकखे भग्गाइं, विणु जुज्झों न वलाहुँ।

जहाँ खड्ग का व्यवसाय होता हो ऐसे देश चलो, हम तो युद्ध के बिना दुबले हो गए हैं अब बिना युद्ध के स्वस्थ न होंगे।

आयहिं जम्महिं अन्नहिं गोरी सु दिज्जहि कंतु

गय मत्तहँ चत्तकुसहं अब्भिडइ हसंतु

हे गौरी, इस जन्म में और दूसरे जन्म में भी वह कंत दीजिए जो मतवाले निरंकुश गर्जों से हँसता हुआ आ भिड़े। हमारी आदत हमेशा महिलाओं के जौहर हो जाने की सुनने की रही है परंतु अपभ्रंश काव्य में स्त्री जौहर नहीं युद्धगर्विता है। हेमचंद्र ने लिखा है -

भल्ला हुआ जु मारिया बहिनी म्हारा कंतु

लज्जेज्जन्तु वयंसियहु जइ भग्गा घर एंतु ॥ (हेमचंद्र)

एक कुमारी एहो नर एहु माणोरह-ठाणु।

एहऊँ बढ चिन्तन्ताहं पच्छइ होइ विहाणु ॥

यह कुमारी है, यह नर है, यह मनोरथों का स्थान है। ऐसे सोचते-सोचते अंत में मूर्खों का विहान हो जाता है। अतएव,

प्रियएम्वाहिं करे सेल्लु करि छडडहिं तुहुँ करवालु

जं कावालिय वप्पुडा लेहिं अभग्गु कवालु।

हे प्रिय, अब तो हाथ में भाला (सेल) धारण कर करवाल छोड़ दे। जिससे बापूरे कापालिक अभग्न कपाल(खप्पड़) लें।

कन्तु महारु हलिसहिए निच्छड़ रूसड़ जासु।

अत्थिहिं सत्थिहिं हत्थिहिं वि ठाउ फेडड़ तासु।

अर्थात् हे सखी, हमारा कंतु जिससे रुष्ट हो जाता है, उसके ठाँव तक को अस्त्रों, शस्त्रों और हाथों से तोड़-फोड़ देता है।

हेडाउ का तुरिय जिउं

हाथ न फेरड़ सउ सउ बार। (राजमती)

मै हेड़ा (हार) के उस घोड़े की तरफ उपेक्षित हूँ, जिस पर हेड़ा वाला सौ-सौ दिनों तक हाथ नहीं फेरता। कौशल जनपद की दरिद्र ब्राह्मण कन्या मुक्ता का दरिद्रता के कारण कुबड़े से विवाह हुआ। गृहस्थी छोड़ जब उसने प्रवज्या ग्रहण की, उसकी मुक्ति का रंग था –

मैं सुमुक्त हो गयी। अच्छी विमुक्त हो गयी

तीन टेढ़ी चीजों से। अच्छी विमुक्त हो गयी।

ओखली सोमूसल से। और अपने कुबड़े पति से।

भली विमुक्त हो गयी।

सुमंगलमाता का नाम सबने सुना हो। यह उस दरिद्र स्त्री का नाम है जो अपने बेटे के नाम से जानी जाती है जिनका अपना कोई नाम नहीं होता। उसका पुत्र सुमंगल प्रसिद्ध भिक्षुक बना। उसका अनुभव सुनिए –

अहो ! मैं मुक्त नारी। मेरी मुक्ति कितनी धन्य है !

पहले मैं मूसललेकर धान कूटा करती थी,

आज उससे मुक्त हुई।

मेरी दरिद्रावस्था के वे छोटे-छोटे बर्तन

जिनके बीच में मैली-कुचैली बैठती थी,

और मेरा निर्लज्ज पति मुझे उन छातों से भी तुच्छ समझता था

जिन्हें वह अपनी जीविका के लिए बनाता था।

अब उस जीवन की आसक्तियों और भलों को मैंने छोड़ दिया,

मैं आज वृक्ष-मूलों में ध्यान करती हुई

जीवन यापन करती हूँ।

अहो ! मैं कितनी सुखी हूँ

मैं कितने सुख से ध्यान करती हूँ।

अपभ्रंश में लोक तत्त्व की प्रधानता है। वस्तुतः लोक की कथा स्त्री जाति की कथा है। जिसमें जो कुछ है- भले ही काल्पनिक है लेकिन है वह यथार्थ की अभिव्यक्ति- जो जीवन में नहीं बस याद उसी की आती है।

‘भविष्यत् कहा’, जैन कवि धर्मपाल की रचना है। यह मूलतः लोक कथा है, इस कहानी की रचना में विशेष उद्देश्य है- मनुष्य द्वारा जो तिरस्कृत होता है उसकी मदद भगवान करता है- स्त्री का सौभाग्य यदि पुरुष छीनता है, तो पुरुष ही उसे वापस भी करता है अंतर इतना ही है कि पीढ़ी छीनती है तो आगे आने वाली पीढ़ी पर आशा लगी रहती है कि वह वापस लौटाएगी; पति यह पीढ़ी है तो पुत्र अगली पीढ़ी का प्रतीक है। ‘भविष्यत् कहा’ में पूर्व प्रचलित लोक कथा को इस प्रकार मोड़ा गया है कि उसके धनपाल अथवा जैन धर्म के विचारों का ही पता नहीं चलता बल्कि उस संपूर्ण युग में काम करने वाली सामान्य मनोवृत्ति का भी पता चलता है।

चौदहवीं शताब्दी के नरपति नाल्ह की रचना ‘बीसलदेव रासो’ में राजा भोज की कन्या राजमती का विरह है। वह भगवान शंकर को उलाहना देती है कि तुमने मुझे स्त्री क्यों बनाया ? और भी तो कुछ बना सकते थे - जंगली जंतु, गाय, बनखंडी की काली कोयल !

अस्त्रीय जन्म काई दिघउ महेस

अवर जनम थारइ घणा रे नरेश

रानि न सिरजीय रोकडी

धणह न सिरजीव धउलीय गायी ।

बनखंड काली काइली

हउ बाइसती अंबा नइ चंपा की डाल

भषती दास बिजोरडी

अर्थात मैं काली कोयल होती तो स्वछंदतापूर्वक चंपा की डाल पर बैठती, अंगूर और बिजौरी खाती।यहाँ कितनी परतंत्र हूँ मैं ! और वह विधाता को उलाहना देती है-

आँजणीकाइं न सिर जीय करतार

सेत कमावती स्यऊँ भरतार

पहिरण आछी लोवणी

तुंग तुरीय जिम भींडती गाय

साईय लेती सामुही

हँसी हँसि बुझती प्रिय की बात ।

अगर आदमी बनाना था तो जाटनी क्यों न बनाया ! जाटनी होकर पति के संग-संग खेती करती, लोवणी पहनती, अपने शरीर से प्रिय के शरीर का गाढा स्पर्श करती,हँस-हँस कर उससे बातें करती। यह सामंती कुलीनता की परतंत्रता से मुक्ति है। अपभ्रंश काव्य में स्त्री शौर्य का पक्ष लेती है भले ही इससे महिमामंडन पुरुषों का हो । नायिका द्वारा अपने नायक के जीवन को दाँव पर लगाने का चिंतन पहले या बाद में नहीं दिखता । अपभ्रंश काव्य में स्त्री का अंकन व्यक्तिगत, व्यावहारिक और सामाजिक जीवन में क्रान्तिकारी के रूप में दिखायी देता है । गलदश्रु भावुकता से दूर पराक्रमी के रूप में स्त्री यहाँ उपस्थित है ।

- डॉ. बन्दना झा, हिंदी विभाग,
वसंत महिला महाविद्यालय,
राजघाट, वाराणसी-२२१००१

*